

विक्टर फ्रंकेल और उनकी पुस्तक “मैन्स सर्च फॉर मीनिंग”

डॉ. हेनरी अब्रमसन

हिंदी अनुवाद : अरविन्द गुप्ता

विक्टर फ्रंकेल ने दूसरे महायुद्ध में हिटलर के कंसंट्रेशन कैम्पस में तीन साल तक कड़ी सजा झेली। उन्होंने मनोचिकित्सा जगत में एक नयी धारा की शुरुआत की। ज्यादातर मनोचिकित्सकों की तरह, उन्होंने भी अपना काम वियाना में ही किया। सिगमंड फ्रायड को मनोचिकित्सा विज्ञान का पितामह माना जाता है। उनके छात्र अडलर को दूसरे मनोचिकित्सा स्कूल, और फ्रंकेल को मनोचिकित्सा के तीसरे स्कूल का जनक माना जाता है। फ्रंकेल ने **लोगो-थेरेपी** का इजाद किया। ग्रीक में “लोगो” का अर्थ होता है “शब्द”। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों के चिंतकों ने बड़े-बड़े सिद्धांतों की व्याख्या की। फ्रायड के लिए सबसे अहम् सवाल “आनंद” का था। नीत्शे के लिए सर्वोच्च प्रश्न “सत्ता” का था। पर फ्रंकेल के सामने सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न “जीवन का मतलब” खोजना था। फ्रंकेल का योगदान केवल मनोचिकित्सा जगत तक ही सीमित नहीं रहा। उससे व्यापक समाज लाभान्वित हुआ। उनके सिद्धांतों से लाखों-करोड़ों हताश और निराश लोगों को फायदा हुआ जो अपने जीवन में “अर्थ” खोज रहे थे। अगर लोग अपने जीवन में “अर्थ” खोजते, तो उनमें तमाम कष्ट और पीड़ाएं झेलने के क्षमता आती थीं।

विक्टर फ्रंकेल का जन्म 1905 में, और मृत्यु 1997 में हुई। वो लगभग पूरी बीसवीं शताब्दी जिए। वो उस शताब्दी के एक महान चिन्तक भी थे। उनका जन्म एक मध्यम-वर्गीय, यहूदी परिवार में हुआ। उनके परिवार के सदस्य लम्बे अरसे तक ऑस्ट्रिया की सरकार में नौकरशाह रहे। यहूदी परम्पराओं से वे अच्छी तरह अवगत थे। बचपन में वो बहुत अच्छा गाते थे इसलिए धार्मिक अनुष्ठानों में उनके गीतों की ज़बरदस्त मांग रहती थी। थोड़ा बड़े होने पर उनको वास्ता नास्तिक सिद्धांतों से हुआ। और शायद इसीलिए वो धर्म की राह पर आगे नहीं बढ़े। धर्म का उनके जीवन पर गहरा प्रभाव रहा, पर उन्होंने धर्म का कभी अभ्यास नहीं किया। फ्रंकेल की दूसरी पत्नी इसाई थीं। अपने घर में वो यहूदियों के पर्व “खनका” के साथ-साथ इसाई पर्व क्रिसमस भी मनाते थे। उनके महत्वपूर्ण योगदान के कारण फ्रंकेल की पत्नी उनका बहुत सम्मान करती थीं।

अब ज़रा फ्रंकेल की ज़िन्दगी पर नज़र डालें। वो पेशे से एक डॉक्टर थे और उन्होंने “न्यूरोलॉजी” में उच्च पदवी ग्रहण की। कम उम्र से ही उनपर सिगमंड फ्रायड का प्रभाव पड़ा। एक रूप से सिगमंड फ्रायड, फ्रंकेल के गाइड थे। दोनों के बीच काफी पत्र व्यवहार भी हुआ। फ्रायड ने फ्रंकेल को एक शोध-पत्र प्रकाशित करने के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार फ्रंकेल, मनोचिकित्सा के पितामह के सीधे संपर्क में रहे। फ्रंकेल पर, फ्रायड के शिष्य अडलर का भी प्रभाव पड़ा। “आत्महत्या” विषय में फ्रंकेल की विशेष रुचि थी। सारी ज़िन्दगी फ्रंकेल इस विषय पर शोध और मनन-चिंतन करते रहे। 1920 और 1930 के दशकों में, परीक्षा में कम नंबर आने के कारण बहुत से छात्र आत्महत्या कर रहे थे। तब फ्रंकेल ने छात्रों के लिए बड़े पैमाने पर निशुल्क परामर्श यानि काउंसलिंग आयोजित की जिससे बहुत लोगों को लाभ पहुंचा। उस समय आत्महत्याओं का कुछ ऐसा दौर था कि छात्रों के हॉस्टल निर्माण के दौरान, कमरों में खिड़कियाँ नहीं होती थीं। क्योंकि खिड़कियों से कूदकर निराश छात्र खुदकशी कर सकते थे! फ्रंकेल की फ्री-

काउंसलिंग सर्विस के कारण वियाना में आत्महत्याएं शून्य हो गईं! यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी! बाद में फ्रंकेल ने “आत्महत्या” विषय को अपना पेशा भी बनाया. उनका मानना था कि अगर लोग अपने जीवन में कोई मकसद या अर्थ खोज लें, तो वे किल्लत और मुश्किलों से भरी ज़िन्दगी, उदासी और डिप्रेशन को भी झेल पाएंगे. पर ज़रूरी है कि उनके पास ज़िन्दगी जीने का कोई सबब हो. फ्रंकेल की काउंसलिंग से हजारों डिप्रेस्ड महिलाओं को फायदा हुआ. फ्रंकेल ने वियाना के बड़े स्टाइनहोफ अस्पताल के मनोचिकित्सा विभाग में काम करना शुरू किया. वहां वो “आत्महत्या” वाले डिपार्टमेंट के प्रमुख थे. वहां केवल आत्महत्या करने वाले मरीजों को ही भर्ती किया जाता था. यहीं पर फ्रंकेल ने हजारों महिलाओं का निशुल्क इलाज किया.

जब फ्रंकेल अपने व्यवसाय में प्रगति कर रहे थे, तब पश्चिमी यूरोप के कई देश - खासकर जर्मनी और ऑस्ट्रिया, राष्ट्रीय-समाजवाद की ओर बढ़ रहे थे. 1938 में जर्मनी ने, ऑस्ट्रिया पर कब्ज़ा किया. उसके बाद से हिटलर यूरोपीय देशों से और रियायतें मांगने लगा. मित्र देशों को लगा कि कहीं पहले महायुद्ध जैसी दुबारा जंग न छिड़ जाये, इसलिए वे हिटलर की मांगों को मानते रहे. इस तुष्टि के काफी भयावह परिणाम निकले. धीरे-धीरे हिटलर ने ऊंगली पकड़ते-पकड़ते गिरेबान पकड़ना शुरू किया. उसकी मांगे दिन-ब-दिन बढ़ती गयीं. अंत में हिटलर ने चेकोस्लोवाकिया के उस पहाड़ी इलाके की मांग की जहाँ बहुत से जर्मन मूल के लोग रहते थे. तब ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधानमंत्री चेम्बरलेन ने, हिटलर के साथ समझौता किया और चेकोस्लोवाकिया का वो इलाका जर्मनी को सौंप दिया. चेम्बरलेन को लगा कि उस तोहफे के साथ हिटलर की मांगें बंद हो जाएँगी. पर ऐसा हुआ नहीं. ऑस्ट्रिया में एक वर्ग था जो जर्मनी के साथ विलय से बहुत खुश था. इसीलिये ऑस्ट्रिया में नात्सियों का प्रभाव बहुत तेज़ी से फैला.

इन तेज़ी से घटी राजनैतिक घटनाओं का फ्रंकेल पर बहुत बुरा असर पड़ा. उन्हें स्टाइनहोफ अस्पताल से निकाल दिया गया, उनका पद उनसे छीन लिया गया. मेडिकल डॉक्टर के रूप में प्रैक्टिस करने पर उनपर पाबन्दी लगी. उन्हें “यहूदियों का डॉक्टर” करार दिया गया. अब वो केवल यहूदी मरीजों का ही इलाज कर सकते थे. स्टाइनहोफ अस्पताल छोड़ने के बाद फ्रंकेल ने रोथचाइल्ड अस्पताल में काम करना शुरू किया. यह अस्पताल यहूदियों के लिए था. यहाँ फ्रंकेल न्यूरोलॉजी विभाग के अध्यक्ष बने. वे बहुत कठिन और विषम परिस्थितियों में भी यहूदियों का इलाज करते रहे. उस समय यहूदियों पर नात्सियों का अत्याचार लगातार बढ़ रहा था, जिससे यहूदी बहुत परेशान और डिप्रेस्ड रहते थे. वियाना के यहूदियों को तुरंत कंसंट्रेशन कैम्पस में नहीं भेजा गया. इसमें कुछ साल लगे. पर वहां के यहूदियों को बहुत दबाव में जीना पड़ा. इस काल में फ्रंकेल ने नात्सियों द्वारा विकलांग बच्चों को मारने की नीति के खिलाफ बहुत कड़ा रुख अपनाया. नात्सी, डाउन्स सिंड्रोम और अन्य जेनेटिक रोगों से पीड़ित बच्चों की हत्या करना चाहते थे, जिससे कि एक विशुद्ध “आर्य” नस्ल का निर्माण हो सके. इसके लिए इन बच्चों की डाक्टरी जांच करवाई जाती थी. फ्रंकेल ने जांच के दौरान हजारों बच्चों को सामान्य करार दिया. उससे बच्चे मौत से बच सके. 1941 के बाद इन्हीं नीतियों के तहत नात्सियों ने लाखों यहूदियों को गैस की भट्टियों में झाँका.

उसके बाद “होलोकॉस्ट” का दौर शुरू हुआ. कंसंट्रेशन कैम्प में भेजे जाने से पहले फ्रंकेल ने एक युवा यहूदी महिला - अनातोली ग़ोसअर से शादी की. शादी के चन्द महीनों बाद ही दोनों को अलग-अलग कंसंट्रेशन कैम्पस में भेजा गया. यहाँ पर फ्रंकेल के जीवन की त्रासदी और मार्मिक हो गयी. भाग्यवश, कंसंट्रेशन कैम्प में फ्रंकेल को अमरीका जाने का

वीसा मिला. फ्रंकेल बेहद खुश हुए क्योंकि अब वो अपनी पत्नी के साथ अमरीका में सुरक्षित रह सकते थे. इस खबर को सुनाने और खुशी को बाँटने के लिए फ्रंकेल अपने माँ-बाप से मिलने गए. घर में फ्रंकेल को मेज़ पर एक मार्बल (संगमरमर) का टुकड़ा दिखा. पिता ने बताया कि नात्सियों ने वियाना में यहूदियों के महान सिनागोग को ध्वस्त किया था. मलबे में ढूँढते हुए उन्हें टेन कमांडमेंट्स का एक टुकड़ा मिला जिसमें एक अक्षर हिब्रू में लिखा था. मंदिर के ध्वस्त होने से उदास होकर पिता उस मार्बल के टुकड़े को बतौर यादगार घर ले आये थे. फ्रंकेल ने पिता से पूछा, “आप टेन कमांडमेंट्स में से किस कमांडमेंट को बचा पाए?” पिता ने उत्तर दिया, “वो कमांडमेंट था - अपने माता-पिता का आदर करो”. इसका फ्रंकेल पर बेहद गहरा भावनात्मक प्रभाव पड़ा और उन्होंने अमरीकी वीसा को रद्द होने दिया. उसके बाद फ्रंकेल और उनके पूरे परिवार को कंसंट्रेशन कैम्प में भेज दिया गया. कंसंट्रेशन कैम्प्स में माता-पिता के साथ-साथ उसकी युवा पत्नी का भी क़त्ल हुआ. यहीं से फ्रंकेल की लोगो-थेरेपी की शुरुआत भी हुई.

फ्रंकेल को एक-के-बाद-एक करके चार अलग-अलग कंसंट्रेशन कैम्प्स में भेजा गया. यहाँ पर कंसंट्रेशन कैम्प्स के बारे में कुछ बताना ज़रूरी होगा. हिटलर ने दो अलग-अलग तरह के कैम्प्स स्थापित किये थे. पहले वाले कंसंट्रेशन कैम्प्स थे, जिनकी संख्या लगभग सौ थी और वे पूरे यूरोप में फैले थे. उनके स्थापना हिटलर ने 1933 में सत्ता सँभालने के बाद शुरू कर दी थी. दूसरे कैम्प्स “मृत्यु कैम्पस” (डेथ-कैम्पस) थे. डेथ-कैम्पस की संख्या कुल छह थी. कंसंट्रेशन कैम्प्स में ज़्यादातर गैर-यहूदी बंदी थे, जो हिटलर के राजनैतिक विरोधी और शत्रु थे. पर जैसे-जैसे दूसरा महायुद्ध पास आया वैसे-वैसे कंसंट्रेशन कैम्पस में ऐसे तमाम लोगों को बंदी बनाया गया जिनसे हिटलर को नफरत थी. इनमें समलैंगिक, जिप्सी, कम्युनिस्ट, भिखारी और विकलांग लोग थे. धीरे-धीरे यह सूची बढ़ती ही गयी. कंसंट्रेशन कैम्प्स में अधिकतर मौतें भुखमरी और बर्बरता के कारण हुईं.

1941 के बाद से डेथ-कैम्पस बनाये गए. उनका एक ही उद्देश्य था - बंदियों को मौत के घाट उतारना. इन कैम्प्स में आने वाले कैदियों में से 90-प्रतिशत को 24 घंटे के अन्दर-अन्दर मौत के घाट उतारा जाता था. डेथ-कैम्प्स में सबसे कुख्यात थे - औश्विग, बिर्केनाऊ, बेल्ज़ेक, मज्दनेक और दचाऊ. दचाऊ शुरू में एक कंसंट्रेशन कैम्प था परन्तु बाद में उसे एक डेथ-कैम्प में तब्दील किया गया. डेथ-कैम्पस की विशेषता थी - वहाँ की गैस की भट्टियाँ. बंदियों के आने के तुरंत बाद उन्हें गैस भट्टियों में भेजा जाता था. बाद में उनके मृत शरीरों को दाहग्रह में भेजा जाता था. दाहग्रह में मृत्यु दर बहुत ज्यादा थी और वहाँ रोज़ सैकड़ों-हजारों शवों से निबटा जाता था. फ्रंकेल को जिस कैम्प में सबसे पहले भेजा गया वो एक मॉडल कैम्प था. इस कैम्प में निरीक्षण के लिए अक्सर रेड क्रॉस को लाया जाता था. नात्सी दुनिया को दिखाना चाहते थे कि वो यहूदियों के साथ कितना मानवीय व्यवहार कर रहे थे. कुछ समय बाद ही फ्रंकेल के पिता की मौत हो गयी. फिर पूरे परिवार को औश्विग भेज दिया गया जहाँ फ्रंकेल की माँ, भाई और युवा पत्नी की भी मौत हुई. फ्रंकेल के परिवार में उनके अलावा केवल उनकी बहन ही युद्ध और कंसंट्रेशन कैम्प से ज़िंदा बच पाई. एक विवरण के अनुसार फ्रंकेल की पत्नी को कैम्प में गर्भपात करने के लिए मजबूर किया गया.

कैम्प्स में आने वाले कैदियों में से 90-प्रतिशत को 24 घंटे के अन्दर मौत के घाट उतारा जाता था. जैसे ही बंदी ट्रेन या मालगाड़ियों के डिब्बों से उतरते, वहीं से उनका चयन शुरू हो जाता था. उनकी शारीरिक सेहत के आधार पर यह चुनाव किया जाता. अगर सेहत अच्छी होती और वो कठिन शारीरिक काम के लायक होते तो उन्हें दायीं ओर जाने को कहा जाता. जुड़वां लोगों को भी दायीं ओर भेजा जाता. कारण? जुड़वां लोग मेडिकल रिसर्च में बहुत काम

आते. पर बाकी सभी लोगों को बायीं ओर धकेला जाता. वहां उनके सारे व्यक्तिगत कीमती सामान छीने जाते. इसमें पतलून के अस्तर में सिले सिक्के, सोने के दांत, कृत्रिम अंग और चश्मे जैसे सामान शामिल होते. कुछ लोगों की चमड़ी भी उधड़ी जाती, जिससे बाद में लैंप-शेड बनाये जाते. उसके बाद इन बंदियों को गैस की भट्टियों में मारा जाता और फिर उनके शवों को, दाहग्रह में जलाया जाता. जिन 10-प्रतिशित लोगों को दायीं ओर भेजा जाता उनसे कैप में तरह-तरह के काम करवाये जाते. कुछ यहूदियों को गैस-चैम्बर के मृत शवों को दाहग्रह ले जाना होता. कुछ यहूदियों को कैप में देख-रेख के लिए मुखिया पुलिस बनाया जाता. कुछ कैम्पस के साथ कारखाने भी जुड़े थे. मिसाल के लिए औश्विग के आस-पास 5 सेंटेंलाइट कैम्पस थे जहाँ युद्ध के लिए उपयोगी चीज़ों का निर्माण होता था. औश्विग के पास एक कैप में एसीटोन बनता था. यह केमिकल कई उद्योगों में इस्तेमाल होता था. इन शिविरों में बंदियों के साथ गुलामों जैसा सलूक किया जाता था. भाग्यवश, फ्रंकेल को दायीं ओर भेजा गया. कैदी के रूप में उन्होंने कई महीने भूख झेलकर गुलाम जैसे कड़ी मेहनत की. पर बाद में एक काउंसलर के रूप में उनकी शोहरत फैली और उन्हें कुछ आसान काम दिए गए. फ्रंकेल के साथ जो विशेष सलूक किया गया शायद उसी वजह से वो कैप की ज़िन्दगी और युद्ध को झेल पाए. 1942 से लेकर 1945 तक, उन्होंने कंसंट्रेशन कैम्पस के वहाशीपन और निर्ममता को खुद अनुभव किया. वो कई कैम्पस में गए जिनमें औश्विग, और दचाऊ के नज़दीक दुर्खायिम कैप भी शामिल थे.

इन कंसंट्रेशन कैम्पस में फ्रंकेल ने अपनी सबसे महत्वपूर्ण खोजें कीं. होलोकॉस्ट साहित्य में बार-बार कैम्पस में बंदियों का ज़िक्र आता है जिन्हें “मुस्लमान” बुलाया जाता है. यहाँ “मुस्लमान” शब्द का इस्लाम धर्म से कुछ लेना-देना नहीं है. यह शब्द उन बंदियों के लिए इस्तेमाल किया जाता था जो अब मौत की कगार पर थे. शायद उनके अंत में हफ्ते, दो-हफ्ते ही बचे थे. इन बंदियों ने आशा छोड़ दी थी और पूरी तरह से नाउम्मीद हो गए थे. वे शिविर में पागलों की तरह इधर-उधर निरुद्देश्य घूमते रहते थे. जीवन जीने की उनकी इच्छाशक्ति बिल्कुल खत्म हो गयी थी. ज्यादा खाना मिले इसमें भी उनकी अब कोई रुचि नहीं थी. वो कैप में बदहवासी की हालत में इधर-उधर घूमते-फिरते थे और फिर भुखमरी और बीमारियों से मर जाते थे. कुछ मनोचिकित्सकों के अनुसार “तब इंसान मर जाता है, बस उसका खोल बचता है.” फ्रंकेल ने कई बार बाकी बंदियों को आपस में फुसफुसाते हुए सुना, “देखो उसका अब एक ही हफ्ता बचा है, उसके दस दिन बचे हैं, आदि.” ऐसे लोग बिल्कुल अलग और साफ़ छिटकते थे. अगर कोई उनके जूते चोरी कर के लेता तो भी वो बदले में कुछ नहीं करते. वे बिना जूतों के नंगे पैर घूमते रहते और अंत में बर्फीली ठण्ड से चल बसते. ऐसा केवल कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में ही घटता है. कैम्पस में पोषण स्तर अनाथालयों से भी कहीं बदतर था. कैप में “मुस्लमान” जैसे शब्दों के उपयोग मज़ाक में किया जाता था. उस समय ऐसे कई मजाकिया शब्द प्रचलन में थे. मिसाल के लिए यहूदियों से ज़ब्त किये चश्मे, सोने के दांत आदि सामान को जिस बड़े गोदाम में रखा जाता था उसे “कनाडा” बुलाया जाता था. फ्रंकेल खुद “मुस्लमान” बनने की प्रक्रिया से गुज़रे थे और उन्होंने उसका बहुत करीबी से अध्ययन कर, उस प्रक्रिया को बहुत गहराई से समझा था.

यहाँ पर एक अन्य शोधकर्ता और विद्वान टेरेंस देस प्रेस का उल्लेख बहुत ज़रूरी है. वो पहले व्यक्ति थे जिन्होंने कंसंट्रेशन कैम्पस के कैदियों का अध्ययन किया. उनके ऊपर उन्होंने एक विलक्षण पुस्तक लिखी “द सरव्हाईवर” जो 1980 के शुरू में छपी. पर अपनी पुस्तक लिखने के तुरंत बाद टेरेंस देस प्रेस ने खुदकशी कर ली. उन्होंने कंसंट्रेशन

कैम्पस और डेथ-कैम्पस के बारे में जो पढ़ा और समझा वो बहुत विस्फोटक था और उस सच्चाई को पचा पाना बेहद मुश्किल था. अपनी पुस्तक में टेरेंस देस प्रेस ने नात्सियों की रणनीति का उल्लेख किया. सबसे पहले नात्सी कैदियों की सारी व्यक्तिगत चीज़ें छीन लेते थे और उसके बाद उनकी अस्मिता, उनके व्यक्तित्व को पूरी तरह कुचलते थे. जब फ्रंकेल को कैप में भेजा गया तो वो एक पाण्डुलिपि पर काम कर रहे थे, जिसे उन्होंने अपनी जैकेट के अस्तर में सिलकर छिपाया था. वो भी उनसे छीन ली गयी. कैदियों के कपड़े, और बाल भी उतारे जाते थे. उनका नाम भी उनसे छीन लिया जाता था. उनके पास क्या बचता था? मात्र एक नंबर. कैप में किसी को नाम से बुलाने पर सख्त पाबन्दी थी. सिर्फ नंबर से ही आप किसी को संबोधित कर सकते थे. टेरेंस देस प्रेस के अनुसार नात्सी कैदियों को पानी जैसा पतला शोरबा देते थे जिससे सबको दस्त लग जाते थे. बहुत कम शौचालय होने के कारण व्यस्क लोग बच्चों जैसे अपने कपड़ों में ही शौच कर देते थे. इसे टेरेंस देस प्रेस ने “शौच-आक्रमण” की संज्ञा दी. इससे यहूदियों की अस्मिता और मानवीयता अपने सबसे निम्न स्तर पर आ गयी. अंत में वे “मुस्लमान” की श्रेणी में आ गए और फिर उनके लिए सब कुछ शून्य हो गया. यह “मुस्लमान” की श्रेणी भला क्या थी?

फ्रंकेल के अनुसार कैप के ज्यादातर कैदियों के जीवन में कोई “अर्थ” या “मतलब” नहीं रह गया था. उन्हें आखिर क्या हुआ? कोई इंसान भला इतना कुछ कैसे गँवा सकता है? ऐसी अवस्था में लोग क्या करते थे? हमें इसकी भी झलकी फ्रंकेल की आत्मकथा से मिलती है. जब कभी प्रार्थना आयोजित होती, तो उस भयंकर स्थिति में भी लोग उसमें बेहद लगन के साथ हिस्सा लेते. अगर किसी को बैरक के बाहर सुन्दर सूर्यास्त दिखाई देता, तो बाकी लोग भी उसे निहारने के लिए बाहर आते. जब कैदियों को एक कैप से दूसरे कैप में ले जाया जा रहा होता तो कैदी ट्रेन की झिरियों से रस्ते में पहाड़ों को निहारते. जिन लोगों ने अपना सबकुछ खो दिया था, उनकी प्रकृति की सुन्दरता निहारने में अभी भी रुचि बाकी थी. फ्रंकेल ने खुद इस बात को महसूस किया. पत्नी के बारे में सोचने से उन्हें बहुत शक्ति और बल मिलता था. पत्नी जिंदा भी थीं, या नहीं इसका भी फ्रंकेल को कोई इल्म नहीं था. पत्नी 100-गज दूर थीं या फिर 1000-मील दूर इसका भी फ्रंकेल को कोई अंदाज़ नहीं था. पर कंसंट्रेशन कैम्प की उन अमानवीय और भयानक परिस्थितियों में अपनी पत्नी के बारे में सोचने से फ्रंकेल को अपार बल मिलता था. इन तमाम अनुभवों से फ्रंकेल को लगा कि इंसान में ज़िन्दगी का अर्थ “अर्थ” खोजने की तीव्र ललक होती है. जीवन में कोई उद्देश्य होने पर वो कंसंट्रेशन कैम्प की कठोर-से-कठोर परिस्थितियों का सामना कर पाते थे. अगर इंसान अपने जीवन में “मायने” खोज ले तो वो विषम परिस्थितियों का भी सामना कर सकता था. फ्रंकेल की यह खोज वाकई में ज़बरदस्त थी.

अब हम दूसरे महायुद्ध के बाद फ्रंकेल द्वारा किये सजनात्मक काम पर नज़र डालेंगे. क्योंकि फ्रंकेल बीसवीं शताब्दी के मशहूर चिन्तक थे, इसलिए उनके कई भाषण विडियो पर उपलब्ध हैं. वैसे उन्होंने 30 पुस्तकें लिखी हैं पर जिस एक पुस्तक ने उन्हें अंतर्राष्ट्रीय प्रसिद्धी दिलाई उस पुस्तक का नाम था “**मैनस सर्च फॉर मीनिंग**” (यानि इंसान की ज़िन्दगी में अर्थ की खोज). शुरू में इस पुस्तक का नाम था, “सदा ज़िन्दगी को हाँ कहो!” फ्रंकेल ने अपनी आत्मकथा को इस पुस्तक में तब्दील किया. यह किताब बहुत लोकप्रिय साबित हुई. 2010 तक इस पुस्तक की एक करोड़ बीस लाख प्रतियाँ बिक चुकी थी. एक जापानी अखबार ने हाल में अपने पाठकों से उनकी 10 सबसे प्रिय पुस्तकों के बारे में पूछा. पाठकों ने कहा कि “**मैनस सर्च फॉर मीनिंग**” इतनी महत्वपूर्ण है और उसका सन्देश इतना

शक्तिशाली है कि इस पुस्तक को अगली शताब्दी में भी जिंदा रहना चाहिए. पुस्तक के पहले भाग में फ्रंकेल ने अपने अनुभवों का वर्णन किया है और दूसरे भाग में उन्होंने लोगो-थेरेपी का सविस्तार विवरण लिखा है.

एक बार फ्रंकेल को एक टैक्सी में दो लोग मिले. दोनों आत्महत्या करने की सोच रहे थे. उन्होंने दोनों से अलग-अलग खुदकशी करने का कारण पूछा. “आप क्यों आत्महत्या करना चाहते हैं?” दोनों ने उत्तर दिया, “हम बेहद निराश हैं. अब ज़िन्दगी से हमें कोई अपेक्षा नहीं बची है?” यह सुनकर फ्रंकेल ने उनसे पूछा, “आप ज़रा सोचें : शायद ज़िन्दगी को आपसे अभी भी कुछ अपेक्षाएं हों! शायद आप पर ज़िन्दगी का अर्थ समझने की ज़िम्मेदारी हो.”

फ्रंकेल अंग्रेजी बहुत अच्छी बोलते थे और वो एक सशक्त वक्ता थे. दुनिया की नामी-गिरामी यूनिवर्सिटीज में उन्हें लेक्चर देने के लिए बुलाया जाता था. उन्हें 29 पीएचडी डिग्रियों से नवाज़ा गया.

1972 में उन्होंने यूनिवर्सिटी ऑफ़ टोरंटो, कनाडा में एक भाषण में कहा “लोगों में एक बड़ी गलतफ़हमी है. वे सोचते हैं कि अमरीकी छात्र ज़िन्दगी में बहुत पैसे बनाना चाहते हैं. पर एक सर्वे से मालूम पड़ा है कि केवल 16-प्रतिशत छात्रों का लक्ष्य ही, धन कमाना था. पर ज़्यादातर छात्र क्या करना चाहते हैं? सर्वे के अनुसार, 78-प्रतिशत छात्र अपने जीवन में कुछ “मतलब” और “अर्थ” खोजने को तत्पर थे. इस सर्वे से आप इंसान को उसकी समग्रता में समझ पाएंगे.

एक बार फ्रंकेल ने कहा : जब मेरी काफी उम्र हो गयी थी, तब मैंने हवाई जहाज उड़ाने की ट्रेनिंग ली. मेरे फ्लाइट इंस्ट्रक्टर ने मुझ से कहा, “मान लो कि तुम पूर्व से पश्चिम की ओर जाना चाहते हो, और रास्ते में तुम्हें “क्रॉस विंड” मिलती है तो फिर तुम पश्चिम से कुछ नीचे दक्षिण के बिंदु पर जा पहुंचोगे. इसलिए “क्रॉस विंड” का विरोध करने के लिए तुम्हें पूर्व से उड़ते समय थोड़ा उत्तर की दिशा लेनी होगी. इसको “क्रैबिंग” कहा जाता है. तभी तुम अपने लक्ष्य यानि पश्चिम में पहुंचोगे. शायद यह उपमा इंसानों पर भी लागू होती है. अगर मनुष्य से जैसा वो है, बिलकुल वैसा ही बर्ताव किया जाये तो वो मनुष्यता से गिरकर थोड़ा वहशी बन जाता है. पर अगर हम मनुष्य को “आदर्शता” की पहाड़ी पर बैठाएं तो फिर हम उसे एक “अच्छा इंसान” बनने के लिए प्रोत्साहित करते हैं.

इसलिए अगर हम मनुष्य को जैसा वो है, वैसा ही मानकर हम उसे बुरा बनाते हैं. पर जब हम उससे “आदर्श” बनने की अपेक्षा करते हैं तो फिर वो वैसा बनता है जैसे उसे होना चाहिए. यह सीख मेरे फ्लाइट इंस्ट्रक्टर ने मुझे नहीं सिखाई. इसे प्रसिद्ध लेखक गेटे ने कहा था. शायद मनोचिकित्सा का यह सबसे अहम् गुरु है. इसलिए अगर कोई नवयुवक अपने जीवन में “अर्थ” नहीं खोज रहा है तो फिर वो बुरा, सुस्त और निराश बनता है. हर बुरे आदमी में - चोर, उचक्के, लफंगे, शराबी, ड्रग-एडिक्ट में एक चिंगारी होती है - उनमें जीवन का “अर्थ” खोजने की एक गहरी चाह होती है. उस चाह को पहचानकर हम उसे वो बनाने में सहायक हो सकते हैं, जैसा उसे वाकई में बनना चाहिए था.

यहाँ फ्रंकेल की पुस्तक “मैनस सर्च फॉर मीनिंग” का एक अंश पेश है:

“जब मैंने पुस्तक को 1945 में लिखा था, तो मेरे दिमाग में ऐसा कुछ नहीं था. इस पूरी पुस्तक को मैंने सिर्फ नौ दिनों में लिखा, और मैं चाहता था कि पुस्तक में लेखक का कहीं नाम न हो. यानि वो अनाम छपे. सच तो यह है

कि किताब के पहले जर्मन संस्करण के कवर पर कहीं पर मेरा नाम नहीं था. पर बाद में मित्रों के आग्रह पर मैंने पुस्तक में अपना नाम लिखने की मंजूरी दी. जब मैंने पुस्तक लिखी तो मेरा दृढ़ विश्वास था, कि इस अनाम कृति के लेखक को कभी कोई वाहवाही और साहित्यिक प्रसिद्धि नहीं मिलेगी. मैं अपने पाठकों को केवल एक सन्देश देना चाहता था - चाहें परिस्थिति कैसी भी क्यों न हो, कितनी भी खराब क्यों न हो, फिर भी इंसान के जीवन में कुछ-न-कुछ सम्भावना अवश्य होती है. मुझे लगा कि अगर इस सिद्धांत को मैं कंसंट्रेशन कैम्प जैसी ठोस और क्रूर स्थिति में दिखा सकूँ तो शायद ज्यादा लोग मेरी पुस्तक को पढ़ें. उसके बाद मुझे लगा कि यह मेरी ज़िम्मेदारी है कि मैं जिस क्रूरता से गुज़रा हूँ, मैं उन अनुभवों के बारे में लिखूँ. मुझे लगा कि जो लोग बहुत निराश हैं, उन्हें इन अनुभवों को पढ़ कर कुछ बल ज़रूर मिलेगा."

"मुझे यह बात भी काफी अजीब और महत्वपूर्ण लगी. मेरी दर्जनों किताबें मैं से केवल यही एकमात्र अनाम किताब ही इतनी सफल क्यों हुई? इसलिए यूरोप और अमरीका में, मैं अपने छात्रों को लगातार यह नसीहत और चेतावनी देता हूँ, कभी भी सफलता को अपना लक्ष्य मत बनाओ. तुम जितना ज्यादा सफलता के पीछे भागोगे, वो तुम्हें उतना ही चकमा देगी. क्योंकि सफलता और खुशी का आप कभी पीछा नहीं कर सकते हैं. आप अच्छे और नेक काम, सतत इमानदारी और लगन के साथ करते रहें. उससे आपको अपार खुशी मिलेगी और यही सफलता के साथ भी होगा. अगर आप खुशी और सफलता की परवाह करना छोड़ देंगे तो वो आपके पांव चूमेगी. आप केवल अपनी आत्म की आवाज़ सुने और अपनी पूरी इमानदारी, लगन और निष्ठा के साथ अपना काम करें. फिर समय बीतने के साथ-साथ आपको सफलता ज़रूर मिलेगी. सफलता आपको इसलिए मिलेगी क्योंकि आपने उसकी कभी परवाह नहीं की थी."